कारोबार

ओमा शर्मा

हिन्दी ADDA

कारोबार

https://www.hindiadda.com/karobar/

दरवाजे को हौले-से भेड़कर वह अंदर आया और इशारा पाते ही कुर्सी पर बैठ गया। चालू फाइल को एहतियातन वहीं बंद कर मैंने नीचे सरका दिया। इस दरम्यान एक मिनट की खामोशी रही। एक अबूझ-सी राहत समेटकर मैं कुर्सी के पिछवाड़े पर झूल गया और आश्वस्ति टटोलती निगाह से उसके हाव-भाव परखने लगा।

'तो तुम्हारे हिसाब से केस हिट करने लायक है?'

'एकदम साब, सोचने जैसा कुछ है ही नहीं।'

आँखों में आँखें डालकर उसने यकीन से गर्दन हिलाई और कहते हुए हल्की-सी चपत टेबल के काँच पर जड़ दी।

इस काम में जिसे 'गट फीलिंग' कहते हैं, वह मुझे आ चुकी थी मगर एक परीक्षार्थी का-सा अंदरूनी डर फिर भी बना हुआ था। मैं उसी पर नकेल डालने की जुगत में था, 'अच्छा, कितने की जब्ती हो जाएगी?'

बेहिसाबी रोकड़ा और दूसरी चल संपत्तियों की जब्ती पूरे मिशन की कामयाबी की जान थी इसलिए मैं उसी पर चढ़कर मॉक-फेंसिंग आजमा रहा था। झूठ-फरेब करने में कोई कितना ही उस्ताद बन ले मगर हर पेशेवर मुखबिर इस सवाल का जवाब देने से कतराता है क्योंकि इससे उसकी रोजी-रोटी ही नहीं, साख-प्रतिष्ठा भी जुड़ी होती है। सीधे-सीधे। एवजी में कोई दलील काम नहीं करती है। इसलिए निमिष भर को वह झिझका। एक अलिखित कायदे के मुताबिक रत्ती-भर से ज्यादा की झिझक मेहनत से बनाए आपके ढाँचे को भुरभुरा कर सकती है - शक की वजह से। इसलिए भटकती पुतलियों को दबोचकर उसने लंबी साँस खींची।

'करोड़ से कम नहीं होगी।'

'तुम्हारा दिमाग ठीक है... करोड़ से ऊपर तो हमारे यहाँ सारे ही केस होते हैं, सवाल है, कितने करोड़?' मैंने उसे खारिज-सा करते हुए धमकाया।

'दो-ढाई तो समझो होई जाएगी, नसीब ने साथ दिया तो चार-पाँच भी हो सकती है।' उसने गोकि बिखरे पत्ते समेटे।

'हम नसीब पर कुछ नहीं छोड़ते पठान भाई... इतनी बड़ी दुनिया में इतने बड़े-बड़े मुर्गे खुले घूम रहे हैं... किसे पकड़ना है यह नसीब नहीं, नजर और समझ की बिना पर तय होना चाहिए...'

'फिर भी साब, नसीब तो समझो होना ही हुआ।' उसने मेरी बात बीच में पकड़ ली। उसकी बातों में 'समझो' तकियाकलाम की तरह रहता है।

'ठीक है ठीक है, तुम नसीब की नहीं काम की बात पर आओ।'

'वो तो साब मैंने पैलेई बतला दी है।'

पहले उसने जो बतलाया था... वह अपनी नवीनता के कारण काफी कौतूहल भरा लगा था। हर दूसरे-तीसरे छापे में बिल्डरों और ज्वैलर्स की धर-पकड़ करते हुए मैं खासा ऊब गया था। हमारा निदेशक बार-बार दुहाई देता कि गए दस बरसों में दुनिया के कारोबार का नक्शा बदल गया है मगर हम अपनी आरामपरस्ती में फँसे पड़े हैं। चार लोगों की हमारी टीम ने डेढ़-सौ से ज्यादा कारोबारों की छँटनी की थी मगर याद नहीं पड़ता कि 'फलों का थोक व्यापार' उसमें था या नहीं।

उसने जब सुझाया तो पहली प्रतिक्रिया में खारिज करते हुए मैंने तल्खी ली थी कि विभाग के इतने बुरे दिन भी नहीं आए हैं कि धनिए-पुदीने वालों पर भी छापा मारें।

'धनिया-पुदीना और सेब-संतरों में फर्क है साब।'

'क्या फर्क है भाई?'

'पचास लाख की आबादी के इस शहर में हर रोज ढाई-तीन लाख का धनिया बिकता है और तीस-पैंतीस लाख के फल... फिर फ्रूट्स खानेवाला तबका कौन-सा है ये तो आप बखूबी जानते हैं।'

मैं अचानक रुका। उसकी दलील में आँकड़े नहीं, मानवीय व्यवहार की गहरी समझ थी। एक चौखटे में फँसी सोच के तहत मैं मन-ही-मन मोटा-मोटी हिसाब लगाने लगा कि हर रोज के तीस लाख के बाजार में आठ लाख का हिस्सा रखनेवाले एक थोक व्यापारी की साल भर में कितनी कमाई होती होगी... पच्चीस करोड़ की सालाना बिक्री के हिसाब से छह साल की हो गई सौ करोड़ से ऊपर। जिस ट्रेड को आज तक हाथ नहीं लगाया गया उसका तो सारा कारोबार ही बेहिसाबी होगा। उसने आगे बताया कि आम को लोग भले उसके स्वाद के कारण फलों का बादशाह कहते हों मगर व्यापारियों को यह मुनाफे की वजह से बादशाह लगता है। हर सीजन की शुरुआत केरल के सिंदूरी आमों से होती है, फिर रत्नागिरी और जूनागढ़ के अल्फांसो और हापुस आते हैं, आखिर में सोने पर सुगंध उत्तर-भारत के दशहरी और लँगड़ा की होती है। सारा ट्रेड कमीशन के आधार पर चलता है जिसकी तयशुदा दर छह प्रतिशत है... मगर यह तो

सिक्के का दिखावटी पहलू है : बड़े-बड़े थोक व्यापारी किसानों के आम नहीं, बाग के बाग खरीद लेते हैं... कभी-कभी तो अगले 5-7 सालों के लिए। अपने उत्पाद की कीमत तय किए जाने में किसान के साथ जो छल किया जाता है उसकी नजीर भी उसने मुझे दिखा दी थी। यह देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया कि एक तौलिए के भीतर हाथ की उँगलियाँ घुमाकर व्यापारियों की कार्टल 'प्रतियोगिता' के सिद्धांत की कैसे धज्जियाँ उड़ाती चली जाती है।

मैं वापस उसकी तरफ लौटा।

'कितने पार्टनर हैं?'

'तीन हैं, तीनों भाई।'

'ठिकाने कितने रहेंगे?'

'समझो तीन हो गए बँगले, एक बाप का, एक मार्किट-ऑफिस, एक गोदाम।'

'यानी छह।'

'सात समझो, साला भी है एक, बड़े वाले का। मामू कहते हैं।'

'बाप एक्टिव है?'

'एक्टिव तो नहीं है मगर इन तीनों को पैदा करने का कसूरवार तो है ही...।'

काम की बात के बीच थोड़ी चुटकी मुझे सुहाती है। वह जानता है।

'कसूरवार है तो इस बुढ़ापे में बँगलों को छोड़कर उस फ्लैट में क्या कर रहा है?'

'इन सिंधियों का घर या शक्ल देखकर आप इनकी हैसियत के बारे में अंदाजा नहीं लगा सकते हैं... ये जो दिखते हैं उसके अलावा कुछ भी हो सकते हैं।' अपनी बात मनवाने के लिए पठान अक्सर ऐसे शगूफे छोड़ने लगता। लगभग यही बात उसने एक मारवाड़ी के संदर्भ में कही थी। आप बहस कीजिए और मुद्दे से हाथ धो बैठिए।

अपने निदेशक को विश्वास में लेकर चौथे दिन मैंने उस निशाने को 'साध' लिया था। बस दो एहतियात अपनी तरफ से और बरते, एक तो इस खिलाड़ी न.2 के साथ इस बाजार के खिलाड़ी नं.2 को भी उसी दिन शिकार बनाया और दूसरे, दोनों के बही-खाते लिखनेवाले मुनीमों को भी वही इज्जत बख्शी जो उनके आकाओं को। दोनों घरानों से

कोई पौने चार करोड़ की जब्ती हुई थी जो अपेक्षा से कहीं कम थी मगर दूसरे घराने के एक भागीदार के यहाँ से मिली कुल जमा इक्यावन लाख की नकदी ने किसी तात्कालिक मलाल से बरी कर दिया था। निर्वासित पिता और मामू को 'कवर' करने की हिदायत बड़े काम आई : पिता के यहाँ से एक ऐसी 'चोपड़ी' मिल गई जिसमें हिसाबी कमीशन को क्रमशः घटाने को एक कला का दर्जा दे रखा था, मामू के यहाँ से तो तीन बेनामी खाते ही मिल गए जिनसे निकाली राशि उसी बैंक में 'फिक्स' कर रखी थी। हमारी मामूली बदसलूकी से मामू टूट गया और बिना कोताही किए 'कॉआपरेट' करने लगा।

खिलाड़ी नं.2 की जानकारी मैंने अपने कंप्यूटर से ही जुटाई थी मगर कागज पर पठान को मुखबिर के तौर पर डाल दिया ताकि उसका अतिरिक्त 'उत्साहवर्धन' हो सके। महीने भर बाद उसे पचास-पचास हजार का अंतरिम इनाम भी दिलवा दिया। रकम पकड़ाने के बाद मैंने उसे आड़े हाथ ले धरा 'जीवतराम (खिलाड़ी नं.2) ने मेरी लाज बचा ली वरना पठान तुम तो मुझे ले डूबे थे।'

'क्यों साब क्या हुआ?'

'पूछते हो क्या हुआ? नकदी की कितनी बढ़-चढ़कर उम्मीद बँधा रहे थे... तुम्हारे खिलाड़ी नं.1 के यहाँ से सवा पाँच लाख मिले हैं बस।' मैं गुस्से में था, लताड़ रोक नहीं पाया।

'आपका गुस्सा वाजिब है साब मगर मैं कुछ कहूँ तो मानेंगे?' उसकी आँखों में मोहलत की गुहार थी।

'चलो अब यह भी सही, बताओ,' मैंने सख्त बेरुखी में टाला।

'रवेतीराम के यहाँ आपने किसी मैथ्यूज को इन्चार्ज रखा था?'

'हाँ, हाँ, पार्टी नंबर तीन में।'

'वहाँ गड़बड़ हो गई।'

'मतलब?'

'स्टेट बैंक का एक लॉकर ऑपरेट ही नहीं हुआ... मतलब ऑपरेट तो किया मगर बिना खोले ही छोड़ दिया...' अपने बचाव से उसने मुझे छलनी कर दिया। मैथ्यूज के प्रति

कोई भाव उजागर किए बगैर मेरे भीतर खून उबलने लगा... अक्सर मेरे कमरे में सुबह की चाय पीता है, फिर भी... डायन का पुल्लिंग क्या होगा... हरामी।

'अच्छा!' निष्कवच होकर मेरी आँखें फटी थीं।

'जाने दो साब, थोड़ी-बहुत ऊँच-नीच तो होती रहती है।'

रिवायत के मुताबिक अगले तीन-चार महीने उसे मेरे दफ्तर की शक्ल नहीं देखनी थी। इस दरम्यान बरामद सारे कागजात के गट्ठर से मुझे कर-चोरी की एक ऐसी मूल्यांकित रिपोर्ट लिखनी थी जो मिशन की कामयाबी को सौ-गुना बढ़ाकर सिद्ध करते हुए भी सल्वाडोर डाली की चित्रकारी याद दिला दे। रिपोर्ट पूरी होने के ठीक दो रोज पहले उसका फोन आ गया। अपनी नस्ल के नाम को रोशन करती गर्मजोशी से वह बताने लगा कि साब 'ऐसी चीज हाथ लगी है कि दिल खुश हो जाएगा।'

'यार तीन महीने से कायदे से एक रात नहीं सोया हूँ और तुम दूसरी कब्र में ठेल रहे हो।' मेरी आवाज मुरझाई हुई थी।

'आप देखोगे तो कमल से खिल जाओगे।' उसके जोश की जुंबिश जारी थी।

'इस कमल को इस बार तुम चंद्रा साहब के सरोवर में खिलाओ पठान।'

मैं किसी भी कीमत उसके फुसलाने में नहीं आना चाहता था। यूँ, हर बार एक नया मुर्गा पकड़ने की आदिम इच्छा खून के बहाव में शामिल रहती थी, मगर पौने तीन साल से वही पंचनामा बनवाते, कैवटीज ढूँढ़ते और सच-झूठ के मनोगत औजारों से धन्नासेठों को धराशायी करते काफी ऊब भी होने लगी थी। सोने-जागने की असामान्यता और खाने-पीने की अनियमितता ने अजीब तरह से तोंदियल और नतीजतन 'हवाबाज' बना छोड़ा था। मोर्चे पर आक्रमण करने के इस मजबूर दस्ते में हम आठ लोग थे इसलिए हर हफ्ते ही किसी-न-किसी की 'बारात' निकलती थी। यह भी खूब होता कि एक बारात से लौटे नहीं और उधर दूसरी में भागना पड़ रहा है। मगर उस दुनिया में हम प्रसन्न-सुखी थे तो इसलिए कि एक किस्म के परपीड़ा-सुख को सलीके से बगल में दबोचने के बावजूद, बेडौल ही सही मगर न्याय के एक नामुराद से बच्चे को हम अपने तईं हर रोज डिलीवर होते देखते थे। पठान थोड़ी देर झिझका था क्योंकि अक्सर तो मैं स्वयं उसे 'कुछ नया' लाने को प्रोंप्ट करता था और फिर भी मेहनत से सुझाए उसके पाँच-सात प्रपोजल्स में एकाध को ही तवज्जो देता।

'नहीं साब, देना तो आपको ही है, चाहे महीना और लग जाए...' उसका इतना विश्वास ही काफी था मगर उसके अगले पाँच लफ्जों ने पिघला ही दिया...' आपके हाथों में बरक्कत है...'

किसी विदग्ध लती की तरह एक पखवाड़े के भीतर ही मैं उसके साथ मामले की निटी-ग्रिटीज में उतरता जा रहा था।

यह एक हड्डियों के डॉक्टरों का गैंग था जो ट्रौमा अस्पताल चलाता था। पाँच समवयस्क डॉक्टरों की भागेदारी जिसकी रहनुमाई डॉक्टर आकाश जोशी के सुपुर्द थी। 'ऑपरेशन' की कागजाती तसल्ली के लिए जरूरी बातें वहाँ पहले से ही मौजूद थीं : क्रीम कलर की छह मंजिला भव्य इमारत के अंदर-बाहर के फोटोग्राफ्स, सभी भागीदार डॉक्टरों का साझा नोट-पैड, सभी डॉक्टरों के घर के पते और मोबाइल नंबर, उनके द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली चमाचम गाड़ियाँ...

'मगर धन-चोरी का तरीका क्या है?' मैंने मुद्दा कसा।

'तरीका तो जी बड़ा सीधा है। ट्रौमा के केसिज को हाथ लगाने में दूसरे अस्थि-विशेषज्ञ डरते हैं। इसके यहाँ एक डॉक्टर हैं, मित्रा। उसका भाई पुलिस में है। उसके कारण मित्रा पुलिस को सँभाल लेता है और जमकर वसूलता है। यह काम समझो कोई 10-12 साल से हो रहा है। ज्यादातर बेहिसाबी। मगर पिछले चार-पाँच साल से डॉक्टर जोशी ने घुटने बदलने (नी-रिप्लेसमेंट) की शल्य चिकित्सा में खूब नाम और नामा कमाया है... रोज के दो घुटने ऑपरेट करता है, एक सुबह, एक शाम। हरेक का डेढ़ लाख लेता है।

'यानी साल के तीन सौ दिन भी गिनो तो नौ करोड़ की बिक्री (डॉक्टरों के संदर्भ में बिक्री शब्द कहते मैं इसके अटपटे प्रयोग पर हँसा) ...इमप्लांट समेत कितने ही खर्चे डालो, तीन करोड़ से ऊपर का मुनाफा तो बैठेगा ही।' मेरे कारोबारी जेहन ने अपनी चिड़िया की आँख साधी।

'बेशक, तीन नहीं तो, ढाई तो समझो कहीं नहीं गया।' गर्दन को एक झटके से उसने सरकाया। वैसे खूब लंबी-चौड़ी हाँक ले मगर चलो, कुछ तो 'फीगर्स फोबिया' इसे है।

'पठान, इस शहर में क्या इतने बेवकूफ लोग हैं जो अपनी गाढ़ी कमाई को आधे दिन के इलाज में उड़ा देंगे? साले हर चीज में तो डिस्काउंट और वटाव माँगते हैं... आइ डोंट

थिंक बॉस विल डाइजैस्ट और एग्री टू इट' मुँह बिचकाकर मैंने उसे आदतन खारिज करना चाहा। मगर उसकी जवाबी कार्रवाई ने मेरे शक का पलीता कर दिया।

इन्फोसिस में कार्यरत अपने काल्पनिक चाचा के घुटने के आरोपण के सिलसिले में वह आकाश जोशी की घसीट लिखावट में संभावित खर्चे का हस्ताक्षरित पर्चा मुझे दिखा रहा था। एक मार्मिक आशुकथा के सहारे, इलाज करवाकर बाहर निकल रहे कस्बाई मरीज के बिल की फोटोकॉपी उसने अलग से करवा ली थी। मेरे सामने सब कुछ दिन के उजाले-सा उज्ज्वल था, या इतनी रोशनी तो दे ही रहा था कि डॉक्टर जोशी के खड़े किए अँधेरे चुहचुहा जाएँ। अब कोई गुंजाइश नहीं थी।

और वाकई, हमारी कार्रवाई के बाद कोई गुंजाइश रही भी नहीं। नकदी जरूर हमारी अपेक्षा से कम मिली मगर उसकी एवज में बेहिसाबी चल-अचल संपत्ति के ऐसे दस्तावेज मिल गए कि मिशन के चयन और सफलता की खूब वाहवाही हो गई।

मिशन की एक मजेदार बात डॉक्टर आकाश जोशी के बचपन की सरेआम वापसी थी : वार्ड बॉइज और नर्सों के सामने अपनी मालिकी का मुलम्मा उतार वह बार-बार मेरे घुटने पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगता और 'मैंने तो कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, मैंने तो कभी चींटी भी नहीं मारी...' की सुबकियाँ भरता जाता। बहुत जल्द वह गुत्थी मेरे हाथ लग गई जो उसके पाँव तले की जमीन को इस कदर पोला किए दे रही थी : उसके चेंबर से एक कम-उम्र और यकीनन खूबसूरत हसीना के साथ उसकी रंगीनी पर मुहर लगाती खतो-किताबत और चंद तस्वीरें। यानी तस्वीरे-बुताँ और खातूनों के खत मरने से पहले ही! कौन बचाएगा तुझे मेरे मियाँ मजनू जोशी!

मुखबिर के लिहाज से पठान मेरा मुँह लगा था मगर हमारे आपसी ताल्लुकात पेशेवर ही थे। दुनिया-जहान के राज बटोरकर जब वह मुझसे मिलना चाहता तो मैं उसे किसी नए रेस्तराँ, पार्क या स्टेशन पर आने को कहता, न कि दफ्तर या घर। फोन पर उसे अपना या मेरा नाम लेने की मनाही थी, मेरे साथ किए उसके केसिज के हिसाब से मैं उसे एक संख्या पकड़ा देता था जो उसकी तात्कालिक पहचान का काम करती। किसी मुखबिर को हमारा फोन करना तो उसूलन ही नहीं बनता था क्योंकि निजी तौर पर हमने अविश्वास की यह घुट्टी पी रखी थी कि 'वंस एन इन्फोरमेंट, आल्वेज एन इन्फोरमेंट।' आर्थिक विषमताएँ पाटने के रास्ते संसाधन जुटाने की राज्य की घोषित नीति के हम हरावल पुर्जे थे तो पठान की बिरादरी मानव के सामाजिक व्यवहार से उत्पन्न एक कुटिल पूँजीवादी लुब्रीकेंट। उसका इनाम तो जाहिर था मगर हमारा हासिल वह भटकती ईगो थी जो अपने संभावित शिकारों के बीच रात को शराब की

पार्टियों में बाइज्जत न्यौते जाने अथवा स्थानीय क्लब की तैराकी प्रतियोगिता में 'अतिथि विशेष' बना दिए जाने पर पर्याप्त तृप्त महसूस करती थी।

बहरहाल, डॉक्टर जोशी के सफल 'ऑपरेशन' के बाद मैंने उसे घर बुलाया और ब्लैक लेबल खोल दी। उसने तौबा में कान पकड़ते हुए माफी चाही 'साब आपने इस काबिल समझा, शुक्रिया। मैं नहीं पीता... इस्लाम में शराब पीना कुफ्र है।' अकेले पीने की मेरी आदत नहीं रही। बोतल एक तरफ सरका ही रहा था कि उसने मेरे घुटने पकड़ लिए और नौसिखिया अंदाज में मिन्नत करने लगा, 'साब, यह दूसरा कुफ्र तो मत करवाइए... आप बाकायदा लें... इस्लाम में किसी को शराब पीते हुए देखना काबिले-गुनाह नहीं है।' मजहब पर कसी इस फुरफुरी चुटकी के साथ भरे आदमखोर ठहाके का मैंने भी साथ दिया।

'आज आपकी सिगरेट अलबत्ता जरूर पीऊँगा।' नवाजी इज्जत ने स्नेहिल अधिकार ले लिया था। सिगरेट का कश वह कन्नी उँगली के बीच दबाकर खींचता और थोड़ी-थोड़ी देर बाद चुटकी बजाकर राख झाड़ता।

शराब के घूँटों के साथ तबादलों और प्रोन्नतियों को लेकर रोज किए जानेवाले विलम्बित आलाप और विमर्श आज नदारद थे। न क्रिकेट का मौसम था और न ही उस पर बात हो सकती थी। कुछ देर हम अपने साझा शिकारों और उनकी खासियतों पर बात करते रहे। गए तीन बरस में मेरे हाथों घायल ग्यारह शिकारों में छह पठान की मेहरबानी थे (तीन मैंने खुद-ब-खुद यानी 'सुओ मोटो' तैयार किए थे और दो में दो अलग-अलग मुखबिर थे)। यानी पठान और मेरी खासी जुगलबंदी थी। मगर त्रासदी देखिए कि उसकी किसी जाती चीज की मुझे शायद ही कोई जानकारी थी। आज उसके भीतर कुछ पिघल रहा था।

'इस धंधे में कभी नहीं आता अगर शर्राफ ने उस रोज मुझे साढ़े चार सौ एडवांस दे दिए होते। मैं उसके यहाँ डेढ़ हजार रुपए महीने की नौकरी पर था। मुख्य काम था सहकारी बैंक में चैक जमा कराना, रोकड़ा निकालना और तयशुदा पार्टियों से वसूली करने जाना। पगार मिलने में अभी आठ दिन थे। बरसात के दिन थे। बहन छत से फिसल गिरी थी और कूल्हे खिसकने का इलाज कराने दवाखाने में दाखिल थी। पड़ोस के गल्ले में फोन करवाकर अब्बा ने साढ़े चार सौ का इंतजाम करने को बोला था। अब आप ये समझो कि बाइस दिन की तो उस पर मेरी पगार चढ़ी हुई थी और आधा घंटा पहले ही मैं खुद ढाई लाख निकालकर लाया था। मगर वह टस से मस नहीं हुआ। जहर का घूँट पीकर रह गया। मौका हाथ आते ही मैंने वह नौकरी छोड़ दी और ट्रांसपोर्ट की

दलाली करने लगा। जगह-जगह धक्के खाकर मैं आठ-दस ट्रांसपोर्टरों को काम दिलवाता और आन पड़ने पर उनके छुटपुट काम भी कर देता। उन्हीं दिनों अब्बा को हाऊसिंग बोर्ड का मकान अलॉट हो गया जिसके लिए बारह हजार पेशगी देनी थी। तीन हजार की जिम्मेवारी अब्बा ने मुझ पर डाल दी मगर मुझसे वह भी न बने। बेवजह ब्याज चढ़ गई। दस जगह ठोकर खाकर इंतजाम तो हुआ मगर एक कड़वाहट भीतर जम गई... कि तंगी में कोई सगा नहीं होता... कि पैसे का दरियादिली से समझो कोई वास्ता नहीं। मैंने वह धंधा भी छोड़ दिया और एक तेल मिल में काम करने लगा। छह महीने बाद वह मिल बंद हो गई। बीच में पता नहीं कितनी जगह धक्के खाने के बाद एक शेयर दलाल के यहाँ टँग लिया। थोड़े दिनों बाद ही आपके विभाग ने उसके यहाँ छापा मारा था, वह भी दोपहर ढाई बजे जब मार्किट की रिंग बंद हो चुकी थी। एक राजपुरोहित साब थे उसके इन्चार्ज। पता नहीं अब कहाँ होंगे क्योंकि इस बात को कुछ नहीं तो समझो पंद्रह साल तो हो ही गए। सेठ ने मुझे बतौर साक्षी रखवा दिया जिससे मुझे आपके विभाग की ताकत और तौर-तरीकों का पता चला। सारी कार्यवाही में पता नहीं उन्होंने मुझमें क्या देखा कि बड़े नामालूम ढंग से मुझे अपने दफ्तर आकर मिलने की दावत दे दी।

बस, वह दिन है और आज का दिन। इतने दिनों सेठ लोगों से खाई जिल्लत, इतने दिनों हर मुमकिन बेगार में खुद को जोतने का नतीजा, समझो मेरा सरमाया बन गया। हिसाबी-बेहिसाबी का फर्क तो मुझे ज्यादा नहीं पता था मगर यह खूब जानता था कि हर कामयाब धंधे की बुनियाद चोरी पर टिकी होती है। वैसे तो हर आदमी अपनी तरह और हालात के मुताबिक चोरी करने को आमादा रहता है मगर इतने दिनों की बेपनाह ठोकरों ने इतना इल्म दे दिया है कि खबर हो जाती है कि मुक्तलिफ कारोबारों की कमजोर नसें कहाँ होती हैं और उन्हें कैसे कुरेदा जा सकता है... देखा जाए तो सरकार ने भी तो आपको इसी काम के लिए रख छोड़ा है...'

'बेशक, बेशक।' गोकि किसी स्वप्न से जागकर मैं बड़बड़ाया।

उसके 'रख छोड़ा है' के वाहियात प्रयोग के बावजूद तभी मुझे अहसास हुआ कि अपने पसंदीदा पेय को मैं कितनी शर्मनाक रफ्तार से पी रहा था। एक लंबा घूँट खींचकर मैंने दूसरा पैग बनाया और उसके लिए सूप मँगवाया जिसे, जल्दी खत्म करने के फेर में वह बारी-बारी से प्लेट में डालकर सुड़कने लगा था।

बात का सिरा जोड़ने के इंतजार में मैंने एक और लंबा घूँट खींचा और सहारे का कंधा बदलकर पाँव फैला दिए, 'यार पठान तुम्हारी तत्काल झूठ गढ़ने की काबिलियित का

मैं बहुत मुरीद हूँ... सही कहूँ तो इस मामले में तुमसे बहुत सीखा है मैंने... कैसे कर लेते हो...?'

गहराते सुरूर में ऊपरी तौर पर नागवार लगनेवाले इस आरोप में छापों से पहले की जानेवाली जरूरी टोही हरकतों (रिकॉनिसंस जिसे 'रैकी' कहने का चलन था) का तजुर्बा था। वह अर्राता हुआ गोकि शेर की माँद में हाथ डाल देता था। मैं यथासंभव अनचीन्हा-सा उसके दायरे में डोलता रहता-इत्तफाकन भी किसी परिचित से टकराए जाने की संभावना से खुद को बचाते हुए।

'सर, जरा एक मिनट हल्का हो आऊँ।' उँगली के इशारे से पठान ने अपनी थुलथुल काया को अचकचाकर सीधा किया।

'सामने राइट को है।' मैंने इशारे से समझाया।

वह एक बिल्डर का केस था। श्री पैराडाइज बिल्डर्स का। संभावित ग्राहक बनकर वह किसी फ्लैट का इस बारीकी से मुआयना करता मानो कल से आकर रहने लगेगा।

'किचिन में काम करवाना पड़ेगा... करवा देंगे ना... भैया ऐसा है मेरे सेठ के साथ उसकी बूढ़ी माँ रहती है जिसे एलर्जिक अस्थमा है इसलिए कैमिस्ट शॉप नजदीक चाहिए... इसके सामनेवाला रिहाइशी है या इन्वैस्टर का है, सुनसान में तो नहीं रहना पड़ेगा...' इमारत का मुआइना करते हुए वह सख्तमिजाजी से बकता जाता। बिल्डर से कीमत तय होने के बाद वह दस्तावेजों और 'ऑन' में दी जानेवाली राशि का हिसाब बिल्डर से ही लिखवाता।

'ऑन का प्रतिशत पचास से साठ या सत्तर हो सकता है मालिक' कहकर वह जेब में पड़े माइक्रोटेप को चालू कर देता। किसी जीनियस शिल्पी की तरह अपने मकसद में वह यूँ एकाग्र हो जाता कि मेरी मौजूदगी को भी भुला देता।

'साठ तक आराम से हो जाएगा।'

'फिर ठीक है... वो क्या है सेठ के अपने एक्सपोर्ट के चक्कर में मालिक साब तो लन्दन-फ्रांस घूमते रहते हैं, उनका सारा हिसाब मुझे सँभालना पड़ता है मगर माफ करना, पैसे के मामले में एक रुपए की हेर-फेर जायका बिगाड़ देती है... मुझे आप यहाँ इस सत्रह लाख का ब्रेक-अप करके दे दो' कहकर वहीं पड़ा कागज उसने उसकी कलम के नीचे सरका दिया। बिल्डर ने 7 डी और 10 सी को ऊपर-नीचे लिखकर लाइन खींची

और उसके नीचे 17 लिख दिया। आँख में बाल दबाए पठान के लिए यह नाकाफी था। वह उठा और उसके सामने अध-झुका होकर मासूमियत से दरयाफ्त करने लगा :

'7 डी माने?'

'अरे यह भी नहीं पता, सात डी यानी दस्तावेज सात लाख का।'

'और 10 सी?'

'दस लाख कैश रहेगा।'

'यह हिसाब 5-12 का नहीं हो सकता मालिक।'

'भाई, हमारे यहाँ सात के आसपास के दस्तावेज हो रहे हैं, आपको दिक्कत है तो पाँच का करवा देंगे।'

'मेहरबानी मालिक, मैं हफ्ते-दस रोज में आपसे कॉन्टैक्ट कर लूँगा।' कहकर पठान उठ लिया। मगर भूल-सुधार सी करता बिल्डर बोला :

'आपका नाम?'

'राजन।'

'मोबाइल है?'

'छोटा आदमी हूँ, साब, क्यों मजाक करते हैं।' पठान की यह परिचित पगडंडी थी। वह जानता था कि शक को जहर बनते देर नहीं लगती है। 'शिकार' अब क्या वार कर सकता है? ...वह मालिक का नाम-पता या टेलीफोन पूछ सकता था। नाम-पते की पुष्टि करने की फुर्सत चाहे न हो मगर टेलीफोन तो कोई भी खड़ूस घुमा सकता था। इसका तोड़ उसके पास था : वह अपने घर के फोन का ऐसी आपात स्थिति के लिए उपयोग करता। मगर पहली कोशिश ऐसी नौबत न आने देने की होती। इसलिए वह तुरंत प्रति-आक्रमण कर बैठता।

'मालिक आप तो ऐसे सुनवाई कर रहे हैं जैसे हम तिहाड़ से छूटे हों।'

बात निपटाकर वह नजदीक के पान के गल्ले पर सिगरेट सुलगाता और कुटिलता से हँसकर कहता, 'कोई गुंजाइश साब।'

कागज की लिखावट को उद्घाटित करती बिल्डर की आवाज का साक्ष्य 'पैराडाइज' की खुशहाली की मुकम्मल पोल खोल रहा था।

'नहीं, कुछ नहीं।' अपनी तसल्ली और खुशी पर काबू रखते हुए मैं हामी भरता।

मगर किशनचंद लक्ष्मणदास ज्वैलरी डिजाइनर के मामले में झूठ के तरीके ने हमें दूसरी जिंदगी दी थी। एक निष्कासित कारिंदे की मार्फत उसके दो नंबरी तौर-तरीकों की ब्यौरेवार तफसील पठान ने पहले ही मुहैया करा दी थी। शिकायतों के पुलिंदे को 'ऑपरेशन' में तब्दील करने के लिहाज से हम पहली मंजिल पर उसके दफ्तर की घुमावदार सीढ़ियाँ चढ़नेवाले ही थे कि पास आ रहे आदमी से हमने किशनचंद लक्ष्मणदास की ताकीद कर दी जो बदकिस्मती से वह खुद था।

'जी आप?' मेरी जमीन खिसक गई।

वह साथ-साथ चढ़ता रहा। दरबान ने उसे देखते ही दरवाजा खोल डाला और हमें भीतर धकेल-सा दिया।

'जी मैं किशन... मगर आप?'

'हम एयरटैल से हैं।' पठान ने बचाव में कूद लगाई।

'मगर मैं तो एयरटैल का कस्टमर नहीं हूँ।' संशय के उसी तेजाबी तेवर ने हमें बर्खास्त किया।

'नहीं हैं तभी तो आपके पास आए हैं।' पठान ने नर्मी ओढ़ी।

'आपको मेरा नाम-पता कहाँ से मिला?'

कमबख्त सूत भर गुंजाइश नहीं दे रहा था।

'हम कस्टमर केअर से हैं... अच्छे या संभावित ग्राहकों की खबर रखते हैं।'

मरहम लगाते हुए पठान मिन्नत की मुद्रा में आ गया।

अपने-अपने मॉनीटर्स पर पैवस्त सभी लोगों की निगाहें अब तक हम पर एकाग्र हो चुकी थीं।

'आपका आई कार्ड या कार्ड होगा?'

मेरी साँस रुक गई। क्या करेगा अब पठान? किस घड़ी चले थे घर से। यह केस तो हो गया चौपट। साले कैसे-कैसे दुष्ट लोग हैं दुनिया में...।

'आई कार्ड और कार्ड तो हम अपने सेल्सवालों को इशू करते हैं।'

क्या दूर की कौड़ी लाया है पट्ठा! मगर हे भगवान, यह काम कर जाए।

'तो जो काम आप करने आए हैं यह सेल्सवालों का नहीं है?'

अबे हरामी, निमोलियों का नाश्ता करके आ रहा है क्या?

'आपने बजा फरमाया... यह काम मेनली तो उन्हीं का है मगर कस्टमर केअर वालों को तो ओवरऑल देखना ही पड़ता है... आप जानते होंगे कि सैल कंपनियों में कितना कंपटीशन हो गया है।' पठान ने चिरौरी की। वह बात को वृहत फलक पर ले जाकर टूटे तारे की तरह गुम कर देना चाह रहा था।

तभी, 'होम कॉलिंग' को फ्लैश करता मेरा मोबाइल जिंगलबैल की धुन टेरने लगा। मैंने तपाक से हरा बटन दबा दिया : 'हाँ सर, हम मार्किट में ही हैं... सात-आठ कस्टमर विजिट किए हैं। रेस्पॉन्स तो अच्छा ही है... आना पड़ेगा, ठीक है सर, बाकी आफ्टरनून में कर लेंगे... ओ के सर, आते हैं...' मेरे एकालाप पर पत्नी सन्न होकर 'क्या बकवास किए जा रहे हो' की लाचारी कुनमुनाती रही मगर उसे ज्यादा मौका दिए बगैर मैं उस औजार का दम घोंट चुका था ताकि वह फिर से सांता क्लौज को न पुकारने लग जाए। टोहगिरी करते वक्त हमारे मोबाइल अमूमन गूँगी हालत में ही रहते थे। आज गलती हो गई थी, मगर गलती भी तिनके का सहारा बनकर आ गई थी। यही तो इस पेशे की विचित्र गति है।

जान छुड़ाकर हम बाहर आए तो कन्नी उँगली में फँसाकर सिगरेट का कश खींचते हुए पठान ने चेताया, 'साब इस केस में देर करना ठीक नहीं... इसकी जान-पहचान में जरूर किसी के कोई छापा पड़ चुका है वरना कोई आर्टिस्टिक दिमाग इतना एलर्ट नहीं हो सकता।'

उसी केस में, निदेशक गंगाधर जांगिड़ के सामने दर्ज झूठ ने सारी समस्या ही सुलझा दी थी।

'फार्म हाउस का पता कर लिया है?'

फाइल में मेरी लिखी टिप्पणी और फ्लैग किए दस्तावेज को ध्यान से पढ़ने के बाद जांगिड़ साब ने पूरे गुरु-गांभीर्य के साथ, नजदीक के चश्मे से निगाह उठाकर मुझे तौलते हुए दरयाफ्त की।

'यस सर, वहाँ एक सर्वे टीम रखी है।'

'डज ही हैव ए कीप?'

जांगिड़ की यह स्थायी गाँठ थी कि अनाप-शनाप पैसेवालों की जेब में रखैल का न होना इन्सानी फितरत के बेमेल पड़ता है...' यू सी, द अदर वोमन इज द नेच्यूरल सैंक्ट्अरि ऑफ बिग बिजनेस... हमें नहीं खबर तो यह उसकी होशियारी कम, हमारी टोही कोशिशों की नाकामी ज्यादा है...' उन पर जैसे भगवान ओशो सवार हो जाते। न बताए जाने पर वह केस को मुल्तवी करते हुए कहते, 'फाइंड आउट, देअर इज नो हरी।' और हम 'यस सर' की पूँछ हिलाकर कसमसाकर निकल पड़ते : सच्ची-झूठी की रखैल पैदा करने।

मैं कोई आधी-अधूरी रखैल खड़ी करने ही वाला था कि पठान ने पुख्ता यकीन की सहजता से जड़ा (मुझे ताज्जुब रहा कि अंग्रेजी में खासा पैदल दिखने के बाद उसने जांगिड़ की बात कैसे लपक ली!)।

'दो हैं न साब।'

'दो!' अपने यकीन की इस कदर पुख्तगी में जांगिड़ बेयकीनी से उछल पड़े!

'हाँ साब, एक बाप की है, एक बेटे की।' पठान ने ऐसे कहा मानो वे दोनों सबूतन बाहर खड़ी उसका इंतजार कर रही थीं।

'अइ शाबाश!'

इन्सानी फितरत के इस दो टूक और समतामूलक खुलासे ने जांगिड़ की बाँछें खिला दीं।

अब केस अकस्मात ही इतना मजबूत हो गया था कि दूसरे सबूत बेमानी हो गए थे।

बाद में जब मैंने पठान से पूछा तो तौबा में बारी-बारी से दोनों कान छूकर बोला, 'वो तो साब मैंने ऐसे ही बोल दिया था।'

'ऐसे ही मतलब?' धीमी होते हुए भी मेरी आवाज कड़क थी।

'ऐसे ही समझो खाली-पीली।' वह दाँत निपोरकर हिनहिनाया।

'तू मरवाएगा।'

पहली बार उसके लिए मेरे मुँह से 'तू' संबोधन फिसल गया। मैं कभी उन बेअदब बिरादरानों में नहीं रहा जो उम्र में अपने हर छोटे और दो-चार बरस बड़े को फख्र से 'तू' दाग देते हैं, इस गुमान से कि 'विक्टिम' के प्रति वे कितने स्नेह और नजदीकी का जज्बा रखते हैं।

'तौबा मेरी... आप यह देखिए साब कि केस के बारे में आप खूब जानते-समझते थे और बड़े साब को रखैल चाहिए थी... तो इसमें गलत या झूठ क्या है।' वह नब्बे डिग्री कोण पर सामने अपना पंजा छितराकर मुझे कनविंस कर रहा था। अपनी आवाज की पिच को फिर अचानक धीमे करके बेशर्मी से बोला, 'एक बात बताइए साब... शादी के बाद किसी ने दुल्हन की छातियों की शिकायत की है क्या?'

'व्हाट बुलशिट!' मैंने नरमी से हँसकर उसे चलता किया।

एक अबूझ तसल्ली से वापस लौटकर सामने पकौड़ों और दो-तीन तरह के नमकीनों की ताजा खेप देखकर पठान ने मनुहार से पिघलकर ताना दिया, 'क्या साब, घर भी जाने देंगे कि नहीं।' सभी प्लेटों से कुछ-न-कुछ उदरस्थ करने में अलबत्ता उसने ज्यादा तकल्लुफ नहीं किया।

मुझे ही लगने लगा मानो पकौड़ों के मोल मैंने उससे जवाब माँगा है। पहले तो उसने आसमान की तरफ इशारा करके 'सब ऊपर वाले की दुआ समझो' कहकर शराफतन बचना चाहा मगर अगला घूँट भरते न भरते मैंने देखा कि वह किसी निश्चित यकीन से फूले जा रहा है। अपनी तसल्ली के लिहाज से बोला, 'आपका गिलास खाली हो रहा है, इसे तो भरिए?'

आधे मिनट में एक 'स्माल' के साथ सोडा-पानी मिक्स करके मैंने सामान्य रफ्तार पकड़ी तो किसी पैगंबर की सी भंगिमा ओढ़कर बोला, 'पता नहीं साब... कभी सोचा नहीं... हमारी जाती जिंदगियों के तजुर्बे ही हमारी फितरत तय करते हैं। बड़े दिनों तक ट्रकों के भाड़े की दलाली में ईमानदारी ने मुझे इतनी और ऐसी पटकियाँ खिलाईं कि क्या पूछिए। मैं कायदे से आधे टके पर काम करूँ तो व्यापारियों को ज्यादा लगता मगर पुलिसिए और मुंसीपल्टी के नाम का रोज दो-ढाई सौ झपट लूँ तो उन्हें कोई

एतराज नहीं। हकीकत बात ये है कि सच बोल के जमीर तो सुकून से रहता है मगर दुनियादारी के खामियाजे इस पर भारी पड़ते हैं। गाँव के मैदानी स्कूल में मेरे साथ एक लड़का पढ़ता था, चमन। हमारी तरह ही फाकेहाल मगर रहता बड़ी साफ-सफाई से था। मास्साब उसी से लोटे में हैंडपंप का पानी मँगवाते। एक दिन चमचमाते लोटे में जब वह ठंडा-ठंडा पानी लेकर आया तो मास्साब ने उसकी दरयाफ्त कर दी :

'ले आया?'

उनकी आँखें किसी घात लगाए चीते-सी नापाक थीं।

चमन की समझ न पड़े कि माजरा क्या है। क्या कहे?

'थूक डाल दिया था।' अपने गुबार को मास्साब ज्यादा देर नहीं रोक पाए।

'ना मास्साब!' बेनूर होते जा रहे चमन ने सफाई में गर्दन हिलाई।

मगर एक बलिष्ठ हथेली ने तभी चमन के बाएँ गाल और कान की खपच्चें बिखेर दीं। भरे लोटे के साथ वह औंधे मुँह जाकर गिरा। हालत इतनी खस्ता कि रोने लायक हौसला भी नहीं बटोर पा रहा था।

दरअसल उसकी पीठ पीछे किसी ने इस 'सच' से मास्साब के कान भर दिए थे। चमन कसम खाकर मना करता रहा कि इल्जाम सच नहीं है। उसकी बेतरह धुनाई करते जा रहे मास्साब ने इस बिना पर अपने ब्रेक लगाए, 'ठीक है, आज नहीं थूका मगर सच बता... पहले कभी थूका था... ध्यान रखियो... सच बोलेगा तो मैं छोड़ भी दूँगा पर झूठ बोलेगा तो तेरी खैर नहीं...'

सच या झूठ मगर चमन ने गुनाह कबूल कर लिया, मगर मास्साब ने सरासर वादाखिलाफी की : चमन को जमकर सूँता और स्कूल से निकलवा दिया।

आप यह देखिए कि सच की राह के जरा से वाकए ने एक अच्छे-खासे बच्चे की जिंदगी बदल दी। देहात भर में मची खबर की खिल्ली ने उसके बाप को सन्न कर दिया। तीसरे रोज चमन गाँव से भाग गया जो कभी नहीं लौटा। सुनने में यही आया कि कुछ दिनों उसने गुमटियों पर चाय के बर्तन माँजे, जेबें काटीं और दो-चार बार पुलिस हिरासत में रहने के बाद होते-होते शहर में जिस्मानी कारोबार का दल्ला बन गया।

चमन और स्कूल को छोड़िए, मेरी अपनी जिंदगी में कितने वाकए और हादसे हुए कि सच से यकीन उठ गया। हमारी दुनिया में इतनी कूवत नहीं है कि वह सच को एक

हकीकत की तरह पचा ले... दूसरों के नाजायज ताल्लुकात की तरह वह उसमें एक मालूमाती दिलचस्पी तो रखती है मगर बर्दाश्त नहीं करती है। सच कहूँ, सच इस दुनिया का सबसे बड़ा झूठ है। कितनी तो इसकी बैसाखियाँ हैं... आप हिंदी में क्या कहते हैं... समय-सापेक्ष, व्यक्ति-सापेक्ष, परिस्थिति-सापेक्ष, नीयत-सापेक्ष...।

मैंने उससे क्या पूछा था और पट्ठे ने कहाँ ले जा पटका। बहरहाल अपनी दुनिया के काले-सफेद और खुरदरे झूठों से परे मुझे इन्सानी फितरत में पैवस्त ऐसे चिकने और बेरंग झूठों की याद ताजा हो आई थी जो कड़वे सचों से ज्यादा घातक और मारक रहे थे। स्कूल में वी. के. गुप्ता भौतिकी पढ़ाते थे। अपेक्षाकृत जवान-से दिखते और हँसमुख। विषय में दुरुस्त। बढ़-चढ़कर सवाल पूछने को प्रेरित करते 'मुझे लगना चाहिए मैं कद्दू-बैंगनों को नहीं, समझदारों को पढ़ा रहा हूँ,' वे जैसे चुनौती फेंकते। भला हो उस सीनियर का जिसने वक्त रहते चेता दिया, 'कभी इस चक्कर में मत पड़ना... समझ में न आए तो घर पर दो घंटे एक्स्ट्रा लगा लेना या किसी साथी से पूछ लेना... अपने पढ़ाए पर सवाल किए जाने से गुप्ता जी को एलर्जी है... प्रैक्टीकल्स तो हमेशा इनके ही पास रहने हैं।'

और सालाना नतीजे वाकई इसके गवाह थे।

मगर उसके फलसफे में दो ईंटें जोड़ने की बजाय मैंने बात का रुख बदला, 'मगर मियाँ जमील अहमद पठान, मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि तुम सच की पैरवी कर रहे हो या झूठ की?'

'पता नहीं साब... मैं दोनों को जिंदगी के बरक्स, सिक्के के दो पहलुओं की तरह देखता हूँ, अलहदा करके नहीं...'

मियाँ तुम इतने बड़े फिलॉसफर नहीं हो जितना बने जा रहे हो।

'अमाँ सच-झूठ के दरम्यान इतना घपला भी नहीं है कि दोनों में फर्क ही न हो सके।' मुझे सख्ती से कहना पड़ा।

एक बार फिर उसने कंधे का सहारा बदला और खुजली की हाजत में तर्जनी उँगली कान में डालकर झनझना दी। एक पकौड़े को एक बार में आधे से ज्यादा गड़प किया और किसी पोशीदा चाल को दबाती मुस्कराहट में बोला, 'उसे जाने दीजिए। फिलहाल आप यह बताइए कि आप मेरी काबिलियत कितनी समझते हैं... बताइए, बताइए...'

'काबिलियत की तुममें क्या कमी है, अच्छे-अच्छों की ऐसी-तैसी कर देते हो...।'

'मजाक नहीं सर, सच बताइए।' उसका कौतूहल कुछ दर्ज करने को बेताब था।

'बहुत पहले तुम्हीं ने कहा था... तुम चौथी पास हो...' स्मृति के अँधेरे बस्ते से मेरे हाथ जो लगा, निकाल खींचा।

'जी हाँ, कहा था और अब कह रहा हूँ कि मैं ग्रेज्युएट हूँ, एमए प्रीवियस का फार्म भी भरा था मगर हालात नहीं बन पाए... बी.ए. में मेरे पास हिस्ट्री, सोशियोलॉजी और इकॉनॉमिक्स थे...'

मेरा तीसरा पैग खत्म हो गया था मगर उसके खुलासे ने सुरूर ढीला कर दिया। एक रील मेरे भीतर रिवाइंड होकर दौड़ने लगी... उसका बेढंगे कपड़ों में घूमना-फिरना, कन्नी उँगली में दबाकर सिगरेट पीना, किसी अंग्रेजी लफ्ज के समक्ष हिंदुस्तानी में उसका मतलब पूछना, दूसरों के जरायम धंधों की धर-पकड़ के लिए मुझे फुसलाते रहना और, अभी-अभी उसके बताए वे सभी दोयम-कमतर काम... जो किसी पढ़े-लिखे की सोच और गैरत में शामिल नहीं हो सकते थे। एक पल को जेहन में यह खयाल खटके बगैर नहीं रह सका कि पठान के 'केस' में मेरी 'रैकी' कितनी बुरी तरह 'ऑफ टारगेट' हो गई है। यह कम बड़ा सदमा नहीं था। शायद उसे भी लगा कि अपने बारे में ऐसी बात छिपाकर उसने क्या फिजूल का गैप खड़ा कर लिया है।

भीतर से 'डिनर रेडी' का संदेश आया तो पठान हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। घर से बाहर निकलकर उसे विदा करने की छूट मुझे नहीं थी। अधखुले दरवाजे पर किसी चूहे की तरह उसने दाएँ-बाएँ झाँका और चला गया - इस उम्मीद में कि उसे फोन पर मेरे 'सात नंबर' पुकारे जाने का इंतजार रहेगा।

मगर मैंने उसे 'हाँ भाई सात नंबर' टहेलता फोन नहीं किया। मैं पल-पल अपने तबादले का इंतजार कर रहा था। तीन साल से दिन-रात छापे मारते-मारते मेरी हालत स्टड फार्म के उस घोड़े जैसी हो गई थी जिसके 'काम' को दूसरे बड़े रश्क से देखते हैं मगर एक तात्कालिक आनंद के बावजूद अपने कर्म से वह इतना ऊब-उकता चुका होता है कि दिन-रात 'उसी' से पलायन करने की सोचता रहता है... गधा बनकर बोझा ढोने में जिंदगी खपाना भी जिसे बेहतर लगता हो। मगर एक दुपहरिया वह खटके से मेरे चेंबर में घुस आया। बेमने से मैंने उसे बैठने का इशारा किया। वह मेरी सर्दमिजाजी भाँप गया था इसलिए दोहरे उत्साह से चहककर मुझे सहलाने में लगा था। क्यों इस मुर्दे में जान डालने में लगा है खुदगर्ज... कितना ही कर ले, अब तेरी दाल नहीं गलेगी... अवर हनीमून इज ओवर!

'आपने ऐसा 'केस' नहीं किया होगा।'

'अच्छा, ऐसा नहीं किया होगा तो कैसा किया होगा?' एक अदद उबासी खींचकर मैंने चटखारा लिया... तो जनाब फरमा रहे हैं कि अभी तक हम घास छीलते रहे हैं।

'आपका दिल खुश हो जाएगा।'

वह अपनी लेन में घुसने को आमादा हो रहा था।

'पठान, इस वक्त यह जगह ऐसी बात करने को मुनासिब नहीं है... तुम्हें बताना है तो छह बजे के बाद आना।'

मेरे द्वारा बेतकल्लुफ पर कतर दिए जाने के बावजूद वह 'सॉरी सर' गिड़गिड़ाने लगा और शाम को आने का हुक्म सर पर ओढ़े चला गया।

जब आम खाने ही नहीं हैं तो पेड़ क्या गिनने?

मगर ठीक छह बजे वह उसी तरह दबे पाँव चेंबर में घुस आया। इस दरम्यान मैंने अपना मन और पुख्ता कर लिया था कि बिना मोहलत दिए उसे टरका देना है। इसलिए उसके कायदे से बैठने से पहले ही मैंने दाग दिया, 'तुम जानते तो हो पठान कि मेरे ट्रांसफर का बस आजकल-आजकल हो रहा है... क्या फायदा कि केस करने की वजह से किसी को चार्ज देने में डिले हो जाए।'

'आप केस को एक नजर देख लो... जितना हो सके डेवलप कर लो... बाकी जैसी ऊपरवाले की मर्जी...' कहते हुए उसने हाथ ऊपर उठाया।

ऐसी जायज अर्जी पर बेरुखी में सुनते हुए भी मुझे 'चलो बताओ' की रियायत देनी पड़ गई।

उसने उचककर एक पुलिंदा मेरी नजर कर दिया।

ज्यादातर चीजें अभद्र-सी लिखावट में सिलसिलेवार ढंग से लिखी गई थीं। पढ़ते हुए मेरे चेहरे पर जरा भी शिकन आने अथवा पेज पलटते वक्त वह हौले-से अयाचित कमीपूर्ति करता जाता।

नाम जावेद अहमद सिद्दीकी। बीवियाँ तीन। बँगले चार (एक पुश्तैनी जिसमें विधवा माँ रहती है और जहाँ जावेद दूसरे-चौथे रोज आता-जाता है)। बेटे सात, पाँच

शादी-शुदा। आठ दुकानें चमनपुरा बाजार में, पाँच नवाबगंज में। 'सुकून' सुपर मार्किट में आधे की भागेदारी। नीलमबाग से थोड़ा आगे पाँच हजार गज का प्लॉट जिसमें एक बिल्डर के साथ मिलकर फ्लैट्स-दुकानें बनाने का काम शुरू होनेवाला है। तीन पेट्रोल पंप (दो शहर में, एक हाइवे पर)। तीन टैंकर और बाईस ट्रक। निजी वाहनों में तीन लांसर, दो होंडासिटी, दो कॉलिस, तीन सेंट्रो और एक टाटा सूमो...'

'कोई काम ऐसा भी है जो यह नहीं करता है।'

मैंने तंज कसा... क्या पता मुझे मोहरा बनाने के लिए ही इतना बड़ा चुग्गा डाल रहा है।

'तभी तो।' मेरा मंतव्य समझे बगैर उसने अधीरता से जड़ा।

'यार लानत है हमारे जैसे चश्मपोशों को जिन्हें शहर के ऐसे माफिया अहमक की खबर तक नहीं...'

मैं अब भी उसके 'किला-ए-तसव्वुर' को गिराने में लगा था।

'ज्यादातर चीजें तो बेनामी हैं... फिर साब आप लोग हमारी बस्ती-मोहल्लों में आते कहाँ हैं? आप तो वहाँ घिन और गंदगी ही देखते आए हैं... और आपका भी क्या कसूर जब पुलिस भी किसी मुहिम के दौरान ही हाजरी बजाती है... बिजलीवाला रीडिंग लेने नहीं जाता...' वह अपनी बात बढ़ाता ही जा रहा था कि मैंने टोका, 'अमाँ तुमने हमारी वकत मीटर रीडर जितनी कर दी?'

'वो बात नहीं है साब... जो ताकत और रुतबा आपके विभाग के हाथ है, और किसी के पास कहाँ? पैसा इनसान की सारी करतूतों का समझो जोड़ भी है और निचोड़ भी। पैसे के बगैर धर्म का भी गुजारा नहीं होता, पैसा ईमान डिगाता ही है... और आप लोग आदमी के हलक से इसी को निकाल लेते हो। कमा ले कोई जितना चाहे हिसाबी-बेहिसाबी पैसा... खा तो वह सकता नहीं है, बस उड़ा सकता है, मगर कितना? आखिर में तो वह बीवी के गहने-जेवर बनवाएगा, पुश्तों के इंतजामात में जमीन-जायदाद बनाएगा, लॉकर-एफ.डी. में रखेगा...'

'रखैलों पर उड़ाएगा?'

मेरे जेहन में जांगिड़ साब आ खड़े हुए।

'बेशक, रखैलों पर भी उड़ाएगा' 'पर' पर जोर देकर उसने मेरी बात दोहराई।

'तो तीन बीवियों के बावजूद जावेद यह शौक फरमाता है या नहीं?'

'क्यों नहीं साब, क्या वह इनसान नहीं है?'

मेरी चुहल पर पठान भी बराबर जुगलबंदी करने लगा।

'ऐसे ही जैसे किशनचंद लक्ष्मणदास की थी या सचमुच की?'

मेरे चटखारे की नब्ज पर पोटुओं से अपना टेंटुआ पकड़कर वह पिघल पड़ा।

'अल्ला कसम साब! लो, वो तो मैं भूल ही गया था... एक स्कूल भी तो है इसके... उसकी प्रिंसिपल... कई साल से है। आपको तो पता ही होगा कि स्कूल से बढ़िया आजकल कोई धंधा नहीं। मनमाफिक फीस लो, बिल्डिंग के नाम पर डोनेशन लूटो, उधर सरकारी ग्रांट्स अलैदा... और खर्चे के नाम पर थोड़ा-बहुत बिजली-पानी और स्टाफ-टीचर्स की तन्खाहें... उसमें मनमानी कटौती, जिस मर्जी को लगाओ-हटाओ या अपनी 'प्रिंसिपल' बना लो...'

विभागीय निस्संगता के उस दौर में रिवार्ड की एक फाइल जांगिड़ साब की स्वीकृति के लिए लेकर गया तो उन्होंने बुरी खबर दे मारी : विभाग के अखिल भारतीय तबादलों की नई नीति आ रही थी जिसके तहत इस वर्ष कोई तबादला नहीं होना था, सिवाय शिकायत अथवा अनुकंपाशील मामलों के जिनमें मेरी गिनती नहीं थी। लंबी पारी के कारण मेरे जाहिर आलस्य को भाँपकर उन्होंने अपनी तरह से मुझे खूब झिंझोड़ा - मुख्यतः एक सफल छापेबाज होने के मेरे पोशीदा अहम को सहलाते हुए। ऐसी हालत में हफ्ता-दस दिन यूँ ही निकालने के बाद मैंने जावेद अहमद सिद्दीकी का केस उनके समक्ष रख दिया। उसका नेटवर्क, तौर-तरीका और कारोबारी विविधता देखकर वे लगभग उछल पड़े। टारगेट हिट करने के लिए हर सुरमई रंग वहाँ पहले से ही मौजूद था मगर उनकी अतिरिक्त तसल्ली का सबब कुछ और ही निकला : 'एक प्रवर्तन संस्था के तौर पर इतने बरसों काम करते हुए हमने कभी इस नजरिए से नहीं सोचा मगर पिछले तीन-चार छापों के बाद कई संगठनों ने हम पर आरोप लगाया है - और मैं समझता हूँ कि आरोप बेबुनियाद नहीं है - कि हम अपनी दादागिरी सब पर चला लेते हैं, सिवाय एक खास कम्युनिटी के... आई थिंक इफ वी आर इंपार्शल, लेट्स लुक लाइक वन...'

इससे ज्यादा ग्रीन सिग्नल की दरकार नहीं थी कि मुझे क्या करना है। उल्टे, मुझे एक भीतरी तसल्ली थी कि केस के 'सही' होने की बाबत मुझे निदेशक के सामने कोई खसखसा जस्टीफिकेशन गढ़ने से निजात रहेगी।

जावेद की जड़ों की तहकीकात करना मेरे अभी तक के अभियानों का सबसे कसैला अनुभव था। दूसरे कारोबारी शिकारों में बखूबी आजमाया मेरा हर हथकंडा यहाँ मुँह की खा रहा था। मैं पस्त-हालत (यानी बेनहाया और हवाई चप्पलें चढ़ाए) में कूरियर बॉय बनकर जाता तो तंग गलियों के उस गँदले चक्रव्यूह में निठल्ले बैठे-घूमते लड़के मेरी ऐसी सुनवाई करने लगते कि जान पर बन आती। मैं दफ्तर से दूर किसी पी.सी.ओ. बूथ से ग्राहक बनकर 'अस्सला वालेकुम' से शुरुआत करता तो दूसरे ही पल चौराहे पर अपनी माँ-बहन की इज्जत नीलाम कर दिए जाने की बजबजाती धमकी बर्दाश्त करता। उसकी आवाजाही को ट्रैक करना तो नामुमकिन ही था। पता नहीं क्यों उसे रक्तचाप की शिकायत नहीं थी वरना आसपास के पार्कों में सुबह-सुबह स्पोर्ट्स गीयर में दो हफ्ते ब्रिस्क वॉक करते किसी एक दिन तो मैं उससे टकराता। भला हो 'प्रिंसिपल साहिबा' का जिनकी दरियादिली ने मुझे बस फेल होने से रोक दिया। बहरहाल, मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह समझ गया था कि दफ्तरी काम-काज के सिलसिले में लोग क्यों अवसादग्रस्त हो जाते हैं।

जानकारी के आपसी लेन-देन और आगे की रणनीति तय करने की जगह इस बार शहर की बड़ी लायब्रेरी थी जिसके भीमकाय हॉल में दोपहर को अममून सन्नाटा रहता था। एकाध किताब बगल में दबाकर हम मजे से जरूरी खुसपुस कर सकते थे।

'अमाँ किस दोजख में फँसा दिया तुमने पठान।' दो हफ्तों की पिसायी के बाद मैंने अपनी कोफ्त निकाली।

'दोजख नहीं साब, समझो रिवार्ड केस है... आपके हल्ले हो जाएँगे।' वह ठंडक से आश्वस्त करता।

'जान तो बच जाएगी ना।' किसी निरंकुश के भीतर एक कोने में ठहरे डर की तरह मैं अपना पोस्ट-ऑपरेशन डर उस पर उगलता।

'आज तक कभी हुआ है क्या?'

'तुम यह बताओ कि इतनी सारी जानकारी तुमने कैसे हासिल कर ली?' यह उसके राज की तहकीकात नहीं, टोहगिरी के जोखिम रास्तों मुझे मिले फफोलों की कसक थी।

'आपको जोखिम ज्यादा लगते हैं क्योंकि आप कौम से बाहर के हैं। कौम के भीतर कुछ-न-कुछ तो चलता ही रहता है... शादी-ब्याह के चर्चे, बिरादरी-रिश्तेदारी की बातें। फिर इसके एक लड़के के यहाँ मेरे साले की लड़की नौकरानी है... जिस आदमी की लाखों की जमीन इसने दहशत के दम पर कौड़ियों के मोल हड़प ली, वह मेरी खाला के यहाँ किसी का रिश्ता लेकर आया था...।'

मुझे यकीन आने लगा था फिर भी पूछे बगैर नहीं रहा, 'कोई जाती मामला तो नहीं?'

दरअसल जाती समीकरण चीजों को इतना तोड़-मरोड़ डालते थे कि 'सही' टारगेट की शिनाख्त मुश्किल पेश करती थी... हर निष्कासित कर्मचारी, नाराज भागीदार और त्रस्त लेनदार हमारी मार्फत 'हिसाब' चुकता करने को बौराया रहता था (सिवाय उन चंद 'मित्रों' के जिनकी राष्ट्रीयता की भावना ज्यादा उदात्त किस्म की थी)।

'एकदम नहीं साब... आपके काम की तरह मेरे काम में जाती बात कुछ नहीं होती है। अल्लाह के फजल से किसी चीज की कमी नहीं है... आप जैसे मेहरबानों का साया है। मेरे मुसलमान होने के ख्याल से आपके मन में यह शक आ रहा हो तो बता दूँ कि मैं अपने कारोबार में ऐसी किसी तकसीम को पनाह नहीं देता... पैसे का कोई धर्म नहीं होता साब और वैसे समझो तो सभी धर्मों का धर्म ही पैसा है। छोटा आदमी हूँ साब मगर एक बात जानता हूँ कि ज्यादा पैसा गुनाह की बिना के बगैर नहीं जुड़ सकता और जुड़ भी जाए तो गुनाह की मोरी में ले जाए बगैर नहीं बख्शता...'

यह बात तूने खूब कही मेरे गफ्फार खान। पूछा जाए कुछ, मगर जवाब ऐसा तगड़ा-सा मार दो कि पूछनेवाला ढूँढ़ता रह जाए तो तुम भी बड़ों की सोहबत उठाने लगे हो मियाँ बकरुद्दीन!

काम की बात पर आने के लिए बात बदलनी पड़ी।

'ऐसा है, एस.आर.पी. पूरी मिल गई तो अगले महीने के पहले हफ्ते हिट करने का इरादा है। तुम किसी तरह पता लगाओ कि उन दिनों जावेद कहीं बाहर तो नहीं जानेवाला है।' मेरी अपेक्षानुसार उसने काम की गंभीरता पर कान दिए।

'समझो पता लग गया।'

'तो समझो प्रिंसिपल साहिबा आ गईं लपेट में... गो इस कार्रवाई का नाम 'ऑपरेशन प्रिंसिपल' कर देते हैं...'

मगर टोहगिरी की राह में कुछ हफ़्तों की मेरी दिलतोड़ मेहनत और पठान की सूचनाएँ धरी-की-धरी रह गईं। लायब्रेरी में की गई मुलाकात के तीसरे रोज शहर में लूटपाट, आगजनी, अपराध और हत्याओं का ऐसा एकतरफा विस्फोट हुआ कि आँखों को यकीन न हो। दक्षिणपंथी हिंदुओं के नियोजित जत्थों ने राज्य संस्था की मदद और साँठ-गाँठ से राज्य भर में नृशंसता का ऐसा तांडव रचा कि किताबों में पढ़े दूसरे विश्व-युद्ध के वक्त के थर्रा देनेवाले मनहूस फासी दिन भड़भड़ाकर ताजा हो गए। आदमी-औरत, बच्चे-बूढ़े, अमीर-गरीब, सभी को हुल्लड़ दस्तों ने खरगोश-मेमनों की तरह लाचार हालत में हलाक करने में कोई भेदभाव नहीं बरता... किसी को बाहर से कमरा बंद करके फूँक दिया गया तो किसी को शिकारी कुत्तों की मानिंद दुरदुराकर जिबह कर दिया गया। परिवार के परिवार ही नहीं, बस्तियों की बस्तियाँ भट्ठों की तरह कालिख उगलकर श्मशान बन रही थीं। तकनीकी और प्रबंधन की एक से एक नई जानकारी, अस्तित्व और पहचान के संकट से हिंदुत्व को उबारने में झोंक दी जा रही थी। ग्लोबलाइजेशन के मजबूत दावों के तहत हो रही सूचना क्रान्ति, रातों-रात शहर को यातना शिविर बन जाने से नहीं रोक पाई। हैवानियत के इस वीभत्स जश्न में अधिसंख्य गैर-मुस्लिम आबादी दर्शक भर नहीं थी, बाकायदा या बेकायदा वह उसमें शरीक थी। अखबार वह उस बर्बरता की इंतहा पर शर्मसार होने की गरज से नहीं, अपनी जीत का 'आँकड़ा' जानने की परपीड़न इच्छा से ज्यादा पढ़ती थी।

खबरों से भरे उस दुपहरिया अखबार में ही मैंने अजीब तरह से चुभती तकलीफ से पढ़ा कि जावेद को भी उसकी पैदाइश की सजा दे दी गई थी... तीन लड़कों समेत परिवार में आठ लोग मौत के घाट उतार दिए गए थे। उसके कारोबारी नुकसान की तो अटकल लगानी भी फिजूल थी क्योंकि अभी जहाँ बेनामीदारों की फेहरिस्त बनाई जानी थी वहीं जरूरी नामदार ही गायब हो गए। फिलहाल तो उसके नौ ट्रक और चार निजी कारों के लावारिस कंकाल ही हिंदुओं की विजय-स्मृति बने पड़े थे। जंगली वहशत की तीन-चार रोज चली हुकूमत के बाद, यानी बहुसंख्यकों द्वारा मुसलमानों को 'सबक' सिखा देने के तीन-चार रोज बाद-मार-काट की सामूहिक दास्तानों में कमी तो हुई मगर इन्हीं तीन-चार दिनों ने सैकड़ों बरसों की सभ्यता खारिज कर दी थी। उसके कई महीनों तक राहत शिविरों के हजारों बेघर, बेजार और अभिशप्त, नाटकीय जिंदगी बख्श दिए जाने (बख्शा किसने था, वे तो बस छूट गए थे) पर खुद को खुशकिस्मत समझते रहे। तंगी और गंदगी में रहकर एकजुटता पनपती है, इस फलसफे के तहत अल्पसंख्यकों द्वारा प्रति-आक्रमण कर दिए जाने के डर से हिन्दू समाज के शेरों की नींद अलबत्ता फिर भी उड़ी हुई थी। यह कयास तो वाजिब भी था कि नेस्तनाबूद कर

दिए जाने के अल्पसांख्यिक डर और कौम से ली जा रही बेवजह कुरबानी ने मुसलमानों को जाहिरन बिरादरेपन में बाँध दिया था।

तीन-चार महीने से पठान की कोई खबर नहीं थी। मेरे भीतर वक्त-बेवक्त यह खयाल फिरककर चला जाता कि उन्मादियों ने कहीं उसे भी तो ठिकाने नहीं लगा दिया... आखिर हाईकोर्ट के जज, विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और खुद पुलिस के अफसरान सत्ता-तंत्र में अपनी उपस्थिति रखे जाने के बावजूद अपनी पैदाइश के खिलाफ कुछ भी न कर पाने को मजबूर हो गए थे। ऐसे सामाजिक झंझावात के दौर में अपना दफ्तरी 'फर्ज' जैसा टुच्चा काम करने का सवाल ही नहीं था। जावेद अहमद सिद्दीकी और उसके परिवार के साथ जो हुआ उससे मोटे तौर पर अफसोस हुआ था मगर ऐसे घाघ और कपटी व्यक्ति को अपना शिकार न बनाए जाने की अंदरूनी राहत भी थी।

मगर कोई छह महीने बाद, लायब्रेरी के उसी हॉल में पठान की 'नमस्ते साब' ने एक शनिवार मुझे चौंका दिया। 'तुम यहाँ... अरे... कैसे हो... फोन करके हालचाल तो बता देते...' बेकाबू होकर मेरे मुँह से सवालों की झड़ी गिरने लगी। उसे जिंदा और साबुत हाल देखना पूरी तरह गले नहीं उतरा था।

'अल्ला के फजल से सलामत हूँ साब, कोई नुकसान भी नहीं। मस्जिद पास ही है मेरे घर के...'

उसने मुझे बताया कि हर शनिवार इस लायब्रेरी में आने की मेरी आदत के चलते वह कई शनिवारों से मुझे पकड़ना चाह रहा था मगर हो ही नहीं पाया। 'तो मोबाइल कर दिया होता।' मैंने आत्मीय नाराजगी जताई।

'नहीं साब आजकल मोबाइल का भी कुछ ठिकाना नहीं... हमारी कौम तो वैसे भी शक के निशाने पर रहती है।' लाचारगी से उसकी आवाज निकली।

लायब्रेरी के पिछवाड़े की गुमटी पर खड़े-खड़े ही चाय की सुड़की भरते वक्त मेरी आवाज बोझिल थी।

'बहुत बुरा हुआ पठान... नहीं होना चाहिए था।'

मैं जैसे कहीं-न-कहीं 'हत्यारी' कौम के अहसास से दबा था, 'अरे जाने दो साब... क्या अच्छा क्या बुरा...'

कहना होगा उसने काफी नुनखुरेपन से मुझे कतर दिया। उसकी कौम पर ढाए कहरों के जख्म जेहन में न होते तो बुरा लग सकता था, मगर आज नहीं लगा।

'ऑपरेशन प्रिंसिपल' तो खटाई में ही गया... बेचारे के साथ देखिए आतताइयों ने क्या नहीं कर डाला...'

'वो तो है मगर चारों तरफ से जो 'रिलीफ' आ रही है, उसे भी तो उसी के लोग हथिया रहे हैं... गरीब तो इसमें भी मर रिया है...'

देश-विदेश की सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं से आनेवाली सहायता की खबरें अखबारों में आती रहती थीं। किसी सरकारी योजना के तहत उसके आबंटन में जो भेदभाव या घपला होता है, उससे मैं वाकिफ था।

किसी भी तरह के प्रतिवाद का मौका पठान ने नहीं दिया, 'और फिर साब जो प्रोपर्टीज बेनामीदारों के हाथ महफूज हैं, जो पैसा बैंकों के लॉकर्स और एफडीज में सेफ पड़ा है... जो इनकम बेहिसाबी खातों में दर्ज है उसके बरक्स इस्लामिक रिलीफ कमेटी या दूसरी किसी एजेंसी की मदद का क्या मोल है... 'हमको' यह सब थोड़े ही देखने का होता है... कि दंगे-फसाद में क्या हुआ... यह तो बीमा कंपनी वाले देखेंगे... हमारे मुल्क में यह सब तो चलता ही रहता है। आपका अभी मूड नहीं हो तो कुछ दिन और रुक लेते हैं...'

पठान के 'धर्म' को मैंने मन-ही-मन सलाम किया और गिलास पटककर गहरी आश्वस्ति में उठ खड़ा हुआ।

https://www.hindiadda.com/karobar/